उपसंहार

भारत में आदिवासियों के विस्थापन की समस्या सिर्फ 21वीं सदी में ही नहीं बल्कि हजारों वर्षों पुरानी रही है, अलग बात हैं कि यह दौर दूसरा है और वह दौर दूसरा था। आज भूमंडलीकरण के दौर में जो पूँजीपति लोगों द्वारा विकास के नाम पर आदिवासी को ठगा व लूटा जा रहा है उन्हें उनकी ही जमीनों पर अधिग्रहण कर विस्थापन के लिए मजबूर किया जा रहा हैं इस गंभीर समस्या को सिर्फ और सिर्फ आदिवासी ही समझ सकते है इसलिए यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि आदिवासियों के दबे अत्याचार एवं अन्याय के स्वर को बुलंद आवाज़ देने के लिए, समाज के प्रतिष्ठित व प्रतिबद्ध साहित्यकारों ने एक जुट होकर वर्तमान हिंदी साहित्य में विमर्श के केंद्र में स्थापित ही नहीं बल्कि लगातार चिंतन-मनन कर उसे प्रांजल भी किये हुए हैं। अगर आचार्य शुक्ल की भाषा में कहें तो प्रत्येक देश का साहित्य जनता की चेतना का प्रतिबिम्ब होने के कारण उनके जीवन से संबद्ध प्रत्येक मूल्य को अपने स्वरूप में समेटता आया है तथा उसमें काल एवं स्थिति सापेक्ष परिवर्तनशीलता, पुराने मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों का सृजन करती रहती है। इसी परिवर्तनशीलता के वशीभूत समाज में जनता की मूल संवेदनाओं की छटपटाहट और मूलभूत समस्याओं की तड़प कुछ प्रतिबद्ध रचनाकारों को सोने नहीं देती है।

'रणेन्द्र' हिंदी के और 'मारिया वार्गास ल्योसा' स्पेनिस के ऐसे ही कुछ प्रतिबद्ध रचनाकार हैं जिन्होंने समय तथा समाज दोनों की नब्ज को पहचानते हुए उपन्यास साहित्य में प्रवित्त होते हैं और सफ़ल भी होते हैं। जिसकी आज आवश्यकता भी थी।

इस लघु शोध प्रबंध द्वारा हम जहां एक तरफ देखते हैं कि रणेन्द्र ने 'ग्लोबल गाँव के देवता' में सहज संजीदगी और सादगी के साथ संपूर्ण आदिवासी समाज का चित्रण करते हैं वहीं दूसरी तरफ ठीक इसी के इर्द-गिर्द में मारिया वार्गास ल्योसा के नोबल पुरस्कृत उपन्यास 'क़िस्सागो' में भी वर्णन है।समाज में मुख्य धारा से विरक्त आदिवासी समाज के चित्रण में इन दोनों रचनाकारों के यहाँ पारंपरिक स्थितियों के कथानक की तह परत दर परत खुलती जाती है और इनके पात्र अपने बेबाक-अंदाज में बदलते मूल्यों की उद्घोषणा करते हैं चाहे वह सामाजिक,राजनीतिक,सांस्कृतिक व आर्थिक स्थिति ही क्यों न हो।

दोनों उपन्यासों में चित्रित आदिवासी समाज की दास्तान कहीं न कहीं टकराती है हांलाकि कथानक और पात्र अलग हैं मगर फिर भी दोनों ही आदिवासी समाज व उनकी संस्कृति कीमूल समस्या को उजागर करने में सफ़ल हैं।

जो भी हो दोनों रचनाकारों ने आदिवासियों के सम्पूर्ण जीवन की समस्याओं भूख, बेकारी, मँहगाई, धोखाधड़ी, अन्याय, भ्रष्टाचार, अमानवीयता, अजनबीपन, द्वेष, ख़ून-ख़राबा, एकता जैसे विषयों को अलग न मानते हुए अपनी निगाह के छन्नी से छानकर दायरे में लिया है। समय और समाज की जटिलताओं को कुछ इस अंदाज़ के साथ व्यक्त करते हैं कि यथार्थ और कल्पनाशीलता, परम्परा और आधुनिकता के बीच एक पुल-सा बनता दिखाई देता है। समय बदल रहा है और साथ ही साथ उपन्यास का यथार्थ भी। इन सब तत्वों को केंद्र में रखकर 'ग्लोबल गाँव के देवता' तथा 'क़िस्सागो' में बड़ी ही सहजता और बारीक एकाग्रता से इसको आकार प्रदान किया है।

जहाँ पहला अध्याय के अंतर्गत 'आदिवासी' का अर्थ एवं परिभाषा के साथ-साथ उसके स्वरूप को भी देखने का प्रयास किया है, इसके अलावा वर्तमान में आदिवासी समाज की स्थिति क्या है? ये भी दर्शाया है। वहीं दूसरे अध्याय 'ग्लोबल गाँव के देवता' और 'क़िस्सागो' में चित्रित आदिवासी समाज में आदिवासी समाज, संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, को स्पष्ट दिखाया है

किसी भी समाज को समझना है तो उसकी देश, काल, व परिस्थिति को सबसे पहले समझना जाना चाहिए। यही कारण है कि प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध के तीसरे अध्याय 'ग्लोबल गाँव के देवता' और 'क़िस्सागो' में चित्रित आदिवासी समाज की स्थिति के अंतर्गत, व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखते हुए समाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। इन सबके अंतर्गत 'रणेन्द्र' एवं 'मारियो वर्गास' के लेखक-दृष्टि को भी संपूर्णता के साथ समझने की कोशिश की गयी है।

चौथा अध्याय 'ग्लोबल गाँव के देवता' और 'क़िस्सागो' में चित्रित आदिवासी समस्या में विस्थापन की समस्या को उजागर करते हुए उनके संघर्ष और प्रतिरोध को रेखांकित किया है।